

2. हार-जीत

- अमरदेव आंगिरस

सारे आर्यावर्त में कौशल-नरेश की कीर्ति फैली हुई थी। वे परम दानी तथा प्रजा प्रेमी थे। प्रजा बहुत परिश्रमी थी, अतः राज्य समृद्ध था। पड़ोसी काशी-नरेश उनकी कीर्ति से बहुत जलता था। वह समय पाकर कौशल-नरेश को नीचा दिखाना चाहता था। वह कौशल-नरेश से अधिक धनी, बलवान तथा बहुत बड़ी सेना का स्वामी भी था। वह सोचता था - “मैं भी दान-पुण्य करता हूँ मेरी कोई प्रशंसा नहीं करता। मेरे रहते कौशल-नरेश इतना महत्व देश-विदेश में प्राप्त कर ले, मुझे यह सहन करना संभव नहीं है।” बस, काशी नरेश ने अपने सेनापति को आज्ञा दी - “सेना को अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करो और कौशल-राज्य को धूल में मिला दो।”

कौशल नरेश ने यह समाचार सुना तो अपने सेनापति से कहा - “तुम भी सेना को तैयार करो। मैं मानता हूँ कि युद्ध महाविनाश का कारण है, किन्तु अब क्या किया जा सकता है। मातृभूमि तथा प्रजा की रक्षा तो हमें करनी ही है।”

दोनों सेनाएँ समरांगण में उतरीं। काशी नरेश की सेना बहुत बड़ी थी जबकि कौशल नरेश की सेना उससे आधी से भी कम थी। कौशल नरेश की सेना बहुत बहादुरी से लड़ी। उसने काशी नरेश की आधी से अधिक सेना को नष्ट कर दिया तथा सेनापति को मार डाला, किन्तु अचानक कौशल नरेश एक तीर के मुंह पर लग जाने से घायल हो गए। उन्हें एक वन में जाकर जान बचानी पड़ी। शेष सेना काशी नरेश के मुकाबले कुछ नहीं थी। अतः उन्हें रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा। अन्त में काशी नरेश की जीत हुई।

किन्तु कौशल नरेश की हार से चारों ओर हाहाकार मच गया। प्रजा उनके गुण स्मरण करके अश्रु बहाने लगी। जब यह समाचार काशी नरेश तक पहुँचा तो वे अत्यन्त क्षुब्ध और क्रुद्ध हुए। उन्होंने चारों ओर ढिंढोरा पिटवाया “जो व्यक्ति कौशल नरेश को जीवित या मृत पकड़वा देगा, उसे पुरस्कार में बहुत बड़ी राशि प्रदान की जाएगी।”

जो यह घोषणा सुनता, काँप उठता। अपने राजा को वे ईश्वर अथवा पिता की तरह मानते थे। घोषणा का कोई असर न हुआ।

इधर दुर्भाग्य से पीड़ित कौशल नरेश वन-वन भटक रहे थे। भिक्षुक के वेश में वे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र धारण किए हुए थे। एक दिन मार्ग में उन्हें एक यात्री मिला। वह दुःखी था। भिक्षुक से बोला - “अरे भाई वनवासी, इस वन का कहीं अन्त भी होगा क्या ? कौशल राजधानी को कौन-सा मार्ग जाता है ?”

कौशल नरेश ने उससे प्रश्न किया - “तुम कौन हो, भाई ? तुम किस विपति में पड़े हो ? उस भाग्यहीन देश में तुम क्यों जाना चाहते हो ?”

“मैं वणिक-पुत्र हूँ। मेरी नौका नदी में डूब गई है। मेरा सारा धन नष्ट हो गया है। सुना है, कौशल नरेश बड़े दानी, दयालु तथा प्रजा प्रेमी हैं। मैं उनसे ही कुछ मदद माँगूंगा ताकि कोई व्यवसाय कर सकूँ,” यात्री ने कहा।

यात्री की बातें सुनकर कौशल नरेश के नेत्र भर आये। अपनी प्रशंसा और वर्तमान दशा को देखकर वे बहुत दुःखी हुए। कुछ सोचकर बोले - “अच्छा भैया, चलो मैं तुम्हें कौशल नरेश की राजधानी ले चलता हूँ।”

वे राजधानी पहुँचे। काशी नरेश राजसभा में बैठे वार्तालाप कर रहे थे। उन्होंने उन्हें देखकर पूछा - “तुम कौन हो, भिक्षुक ? यहाँ किस अभिप्राय से आये हो ?”

“मैं भिक्षुक नहीं हूँ।”

“फिर कौन हो ?”

“वनवासी कौशल नरेश - आपका परम शत्रु।”

“आप को पकड़ने के लिए तो मैंने पुरस्कार की घोषणा की है।”

“इसीलिए तो मैं यहाँ आया हूँ। कृपा करके यह पुरस्कार मेरे इस दुःखी साथी को दे दें।”

समस्त सभा पर जैसे किसी अदृश्य हाथ ने जादू की छड़ी घुमा दी हो। सभासद चकित होकर कौशल नरेश का मुख ताकते रह गये। काशी नरेश भी कुछ देर तो सन्नाटे में खो गए। फिर गंभीर होकर बोले - “मैं मानता हूँ आपके साहस को। आपके बुद्धिबल को। किस कौशल से अपनी हार को जीत में परिवर्तित करके पधारे हैं आप। लीजिए, मैं आपका राज्य आपको सौंपता हूँ। इस राज्य की प्रजा आपको हृदय से चाहती है।”

यह कहते-कहते काशी नरेश ने कौशल नरेश को खींचकर सिंहासन पर बिठा लिया और उनके अस्त-व्यस्त जटा-जूट पर राज मुकुट रख दिया।

अभ्यास

1. कौशल नरेश की कीर्ति दूर-दूर तक क्यों फैली थी ?
2. कौशल नरेश और काशी नरेश के चरित्र में क्या अन्तर था ?
3. कौशल नरेश को जनता क्यों चाहती थी ?
4. यात्री को राजधानी तक ले जाना कौशल नरेश ने क्यों स्वीकार किया ?
5. वास्तव में जीत कौशल नरेश की हुई या काशी नरेश की ?